

विस्थापन की पीड़ा का साहित्य

डॉ. आभा जैन

हिंदी विभाग

बाबा गंगादास राजकीय महिला महाविद्यालय, शाहपुरा (जयपुर)

सांस्कृतिक संक्रमण के इस पूरे दौर में विस्थापन की पीड़ा सबसे अधिक त्रासद थी, पौधे को तो उखाड़कर दूसरी जगह लगाया जा सकता है पर गहरी जड़ों वाले विशाल वट वृक्ष को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना अत्यंत असम्भव है। अपनी जमीन से उखड़ने का दर्द आज भी विस्थापितों के हृदयों को सालता है। यशपाल, भीष्म साहनी, अमृता प्रीतम आदि आदि कई सृजन- धर्मी साहित्यकार जो अपने वतन से उखड़कर आए, जिन्होंने इस पीड़ा को भोगा, देखा उन्होंने इसका मर्मस्पर्शी चित्रण अपनी कृतियों में किया है।

विस्थापन की पीड़ा -

दो कौमों की गलत अवधारणा के आधार पर भारत का जो विभाजन हुआ उसने भारतीय मुसलमानों के लिए एक अजीब स्थिति और परिस्थिति उत्पन्न कर दी। पश्चिमी पंजाब, सिंध, सीमा प्रान्त बलूचिस्तान तथा पूर्वी बंगाल भारत से कटकर अलग देश पाकिस्तान बन गया। विजयदेव झारी 'हिंदी- कहानी में मुस्लिम जीवन और संस्कृति' में ऐसे ही मुसलमानों की स्थिति के विषय में लिखते हैं- "विभाजन के साथ ही भारत और पाकिस्तान में परस्पर तनाव ही नहीं अपितु युद्ध की स्थितियां उत्पन्न हो गईं। भारतीय हिंदुओं के हृदय में एक ओर तो भारतीय मुसलमानों की राष्ट्रीयता के संबंध में संदेह की सी स्थिति पैदा हुई, दूसरी ओर भारत में मुसलमानों की और भी अकलियतकी स्थिति के कारण भारतीय मुसलमान भारत में अपने भविष्य के प्रति चिंतित से हो उठे।"

जिस चिन्ता का जिक्र झारी ने किया है उस फिक्र से बेफिक्र राही मासूम रजा भी नहीं थे। अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में जिन शिया परिवारों की कहानी लेखक कहता है उन परिवारों की स्थिति पाकिस्तान बनने से बहुत दयनीय हो गई थी, न तो वे अपनी जमीन-जायदाद को छोड़कर पाकिस्तान जा सके और न ही समय की आवश्यकता के अनुसार स्वयं को ढाल सके। शिया मुसलमान होने के कारण भारत में रह गये और मुसलमानों की नजर में वे संदिग्ध हो गये। बाद में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से उनकी स्थिति अधिक दयनीय हो गई, उनके जीवन का एकमात्र आधार जमींदारी थी और जमींदारी खत्म हो जाने से वे अपने ही घर में निराश्रय हो गये। रजा पात्रों के माध्यम से कहते हैं -

सकीना बोली, "नई मुवा पाकिस्तान बनता, न जमींदारी खत्म होती गंधिया कहिस कि अच्छा मियां लोग पाकिस्तान बना लिये हो तो जाओ जहन्नुम मैं जमींदारी खतम।

एक ओर विभाजन के बाद जहां भारत में रह गये मुसलमान आशंकित हो उठे थे, वहीं दूसरी ओर जो मुसलमान भारत से पाकिस्तान गये, वे भी खुश नहीं थे। यहाँ अपनी संपूर्ण चल-अचल सम्पत्ति को छोड़कर भाई बांधवों के साथ जब वे चले तो रास्ते में लंबे-लंबे काफिलों पर होने वाले नृशंस हमलों ने उन्हें उनके प्रियजनों से विलग कर दिया।

ऐसे ही व्यक्तियों का जिक्र करते हुए महीपसिंह ने 'संचेतना' में अपने लेख में लिखा है "इस देश के विभाजन की - भयंकर मानव त्रासदी के कितने ही गवाह आज भी हमारे मध्य है। 1947 में जो कुछ भी हुआ, वह करोड़ों लोगों के साथ घटित हुई ऐसी भावनात्मक यातना थी जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। विभाजन की सारी लड़ाई राजनैतिक लोभों और वैयक्तिक मन्तव्यों के स्तर पर लड़ी गई और धार्मिक उन्माद को उसका वाहक बनाया गया। समूह स्तर पर लोग

लड़े मरे, घृणित कुत्सित कर्मों के सहभागी बने परन्तु व्यक्ति स्तर पर, मानवीय स्तर पर वे फूट-फूट कर रोये। एक दूसरे से बिछुड़ने के दर्द को लाखों लोग आज भी अपने मनो में समोए हुए है।"

इस प्रकार धार्मिक उन्माद को वाहक बनाकर राजनेताओं ने, किंचित् स्वार्थी तत्वों ने अपना उल्लू सीधा किया। भोली-भाली, निरीह जनता इन कुचालों को समझ नहीं सकी और उनका मोहरा बनकर पिटती रही। गांधी जी देश का बंटवारा नहीं चाहते थे पर सत्ता लोलुप राजनेताओं ने उनकी एक न सुनी। 'रक्तबीज' में शिवसागर मिश्र नेताओं के इसी कृत्य का पर्दाफाश करते हैं - "देश का बंटवारा हो चुका था। नेताओं ने कागज के नक्शे पर एक लकीर खींच दी। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि स्याही की लकीर से खून के फव्वारे फूट पड़ेंगे। उन नेताओं ने स्वाधीनता के अग्रदूत और सत्य के मसीहा महात्मा गांधी की बात नहीं सुनी। गांधी जी किसी भी कीमत पर देश का बंटवारा नहीं चाहते थे। वे द्रष्टा थे, उन्हें मालूम था कि देश का बंटवारा यदि कर दिया गया तो भारत की सामाजिक संस्कृति खतरे में पड़ जाएगी।

हिंदू-मुसलमान के बीच ऐसी दीवार खड़ी हो जाएगी कि उसे इतिहास भी नहीं मिटा पाएगा।

लाखों लोगों के भविष्य के साथ खेलवाड़ करने वाले ये राजनेता जन-जन को अनुभूत होने वाली वेदना से विचलित नहीं हुए। प्रकृति द्वारा निर्धारित सर्व सम्पन्न देश की सीमा को इन्होंने तोड़ डाला और अपनी स्वार्थान्ध बुद्धि से परिचालित होकर नवीन सीमाओं का निर्माण किया। गुरुदत्त मानव निर्धारित इन सीमाओं को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। 'देश की हत्या' में रामचन्द्र इस वेदना से असह्य दुःख अनुभव करता है वह लीना से कहता है "तुम, जो इस देश के विषय में कुछ नहीं जानती, इस वेदना को अनुभव नहीं कर सकती। भारत खण्डित होते देख, मुझको असह्य दुःख हो रहा है देश की सीमा, जो प्रकृति ने बनाई है, बिगड़ जायेगी। उस सीमा के बिगड़ जाने से देश अरक्षित हो जाएगा। जो प्राकृतिक साधन देश की अपने जीवन-मान रखने के लिए मिले हैं, वे बंट जाएंगे और सब देश में बसने वाले निर्धन और भूखे हो जाएंगे। देश की सीमाएं प्रकृति बनाती हैं, मनुष्य को अल्प-बुद्धि नहीं बना सकती।

इस समस्या से सम्बद्ध उपन्यास जैसे 'रक्तबीज', 'देश की हत्या', 'आधा-गाँव', 'कालेकोस', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'धर्मपुत्र', 'पिंजर', 'सूखा बरगद' आदि विभाजन की राजनीति का तीव्र विरोध करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि आम जनता विभाजन के पक्ष में नहीं थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग की आला दर्जे की बैठक ने ही इसे स्वीकृति प्रदान की थी। परन्तु इस स्वीकृति का सबसे बड़ा मूल्य देश की जनता को चुकाना पड़ा जो पाकिस्तान का अर्थ बिल्कुल नहीं समझती थी।

लौटे हुए मुसाफिर में कमलेश्वर ने स्पष्ट कर दिया है कि सामान्य मुसलमानों का पाकिस्तान के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं है। नफ़रत के कारण वे बस्ती तो छोड़ देते हैं पर पाकिस्तान नहीं जा पाते- "पाकिस्तान जाने के जोश में जो धराते काफिलों के साथ गए थे वे सभी गरीबों के थे और उनकी गरीबी ही आड़े आ गई थी। यहाँ, इस बस्ती से तो वे उखड़ गये थे, पर गरीबी ने उनकी टांगे जकड़ ली थी और वे सूबे के पश्चिमी जिलों तक जाकर अटक गए थे सूबे की सरहद तक पार नहीं कर पाए थे। गरीबों को कोई पाकिस्तान नहीं ले गया था। चिकवों की बस्ती में रहने वाले इस बस्ती को छोड़कर अन्य शहरों में चले गये "गनी ही बता रहे थे - कि उनके साथ का कोई भी दिल्ली तक भी नहीं पहुंच पाया.... सब इधर उधर बिखर गए। सुबराती मोची आगरा में राजा मण्डी के चौराहे पर बैठता है.... और चमन बही चुंगी में चपरासी लग गया है। रमजानी का हाल बहुत बुरा बता रहे थे, वह बेचारा भूखों मर रहा है।

जो लोग पाकिस्तान चले भी गए वे भी इस बस्ती को नहीं भुला पाते। 14-15 साल बाद बाकर, रमजानी, फतह वापस इसी बस्ती में आते हैं - मजदूरी करने - "इधर हमारे मकान थे.... हम यहाँ पातालतोड़ कुओं के महकमे में मजदूरी करने आए हैं.... आज ही हमारी भर्ती हुई है। अब रहने का ठौर-ठिकाना देख रहे हैं। इधर हमारे पुराने

नसीबन की आंखों में चमक भर गई और उसका बदन खुशी से थरथराने लगा, "इधर तुम्हारे घर थे अरे तू बशीर तो नहीं" १ लगता तो वैसा ही .. है।" और मिनट भर में सारी पहचानें उभर आई थी उन्हीं गए हुए और बिखर गए घरानों के बच्चे अब मजदूरी करने के लिए फिर से लौटे थे.... और

अपने पुराने घरों की जगह खोज रहे थे चलते वक्त उनके अब्बा या घरवालों ने बताया था - "उधर अपने घर है ।

जिन घरों को नफरत के कारण उनके बुजुर्ग छोड़ गए थे, उन्हीं घरों में वे फिर आकर बसना चाहते हैं । पाकिस्तान इन्हीं मजदूरों के लिए विडम्बना बन गया । यह विडम्बना दो चार लोगों को नहीं वरन् हजारों-लाखों लोगों को भोगनी पड़ी, जो अपने घर से भी उजड़ गए और पाकिस्तान जाकर भी व्यवस्थित नहीं हो पाए ।

इस प्रकार विभाजन का अभिशाप देश की उस जनता को भोगना पड़ा जो मूलतः गांवों में रहती थी । और पाकिस्तान जैसे राजनैतिक शब्दों को नहीं समझती थी । "भारत विभाजन और हिंदी उपन्यास' में डा० हरियश राय लिखते हैं - "शहरों में उतने बड़े स्तर पर सांप्रदायिक दंगे, लूट-मार और मारकाट नहीं हुई, जितनी कि गांवों में हुई। पूर्वी और पश्चिमी पंजाब में कोई भी गांव ऐसा नहीं था जहां सिर्फ मुसलमान रहते हो या सिर्फ हिन्दू । सबसे ज्यादा विक्ट स्थिति वहां उत्पन्न हुई जहां हिंदू और मुसलमान एक साथ रहते थे और उनमें परस्पर भाईचारा था ।

'काले कोस' में बलवन्त सिंह ने उस समय का बड़ा सटीक व यथार्थ चित्रण किया है जब लोगों को पता चलता है कि अब उन्हें यह सब छोड़ना पड़ेगा, अपने पड़ोसियों से विदा लेते समय सभी की आंखें अश्रुपूरित हो जाती हैं । चारगांव में हिंदू-मुसलमानों में परस्पर मैत्री भाव था इसलिए चारगांव में जब मेजर का ऐलान सुनाया गया तो खलबली मच गई, लोगों ने अपनी चीजें संभाल मकान के एक खास कमरे में बन्द करनी शुरू करदी, उन्हें ताले लगाकर चाबियां

अलग संभाली और मकानों की चाबियां अपने-अपने जान-पहचान वाले मुसलमानों को सौंप दी । इस प्रकार सारे दिन हड़बोंग सी रही ।"

चारगांव में पेशोरेसिंह जैसे अनेक परिवार 'पाकिस्तान' का अर्थ नहीं समझते, लेकिन विभाजन की विभीषिका के शिकार होते हैं । इन लोगों को इनके घरों से अलग कर शरणार्थी कैम्पों में फेंक दिया गया । जहां 15 दिन तक इंतजार करने के बाद अमृतसर जाने वाली गाड़ी आती है जिसमें चालीस आदमियों के बैठने के स्थान पर सैकड़ों आदमी भर जाते हैं । विभाजन के दौरान सबसे अधिक त्रासद स्थिति रेलगाड़ियों में उत्पन्न हुई, जहां मजहब की आड़ में सामूहिक कत्लेआम किया गया । कमलेश्वर ने 'लौटे हुए मुसाफिर' में लोगों के दिमाग में बैठे हुए खौफ को देखा है "एक भयानक खौफ लोगों के - दिलो दिमाग पर हावी था। विभाजन हुआ तो पंजाब में खून की नदियां बही... बंगाल में मारकाट हुई । सूबे के बड़े शहरों में कत्ल हुए और बस्तिया जलाकर राख करदी गई ।

शरणार्थियों के लम्बे-लम्बे काफिलों पर होने वाले पाशविक हमलों से भयभीत व्यक्ति अपने को कहीं भी सुरक्षित महसूस नहीं करता, यदि पैदल है तो भी कब दंगाई आ जाये, कुछ नहीं कहा जा सकता और यदि ट्रेन से जाए तो भी कब ट्रेन रोक कर डिब्बे के डिब्बे खून से रंग दिये जाए कुछ पता नहीं । अमृता प्रीतम ने 'पिंजर' में ऐसे ही भयभीत शरणार्थियों के एक काफिले का चित्र खींचा है - "हिन्दुस्तान जाता हुआ एक काफिला पुरों के गांव के पास रुका । पुरुष और स्त्रियां, झुण्ड के झुण्ड पैदल चलते थे । बैलगाड़ियों में उन्होंने बच्चों को भर दिया था । कुछ सिपाही काफिले के आगे थे कुछ पीछे ।

यात्रियों की आंखें भारी हो गई थी। रास्ते की धूल दुर्देव की भांति उनके मुंह सिर पर मंडराकर अब वहीं जम गई थी ।"

विभाजन को विभीषिका नृशंस हमलों के रूप में सिर पर मंडराती रही। लोग बदला लेने के लिए उतारू हो गये थे वे अपना तो सर्वस्व पहले ही गंवा चुके थे अतएव उन्हें किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं थी । 'धर्मपुत्र' में आचार्य चतुरसेन शास्त्री दिलीप के मुंह से ऐसी ही अग्निवर्षा करवाते हैं - जिसे सुनकर आहत व्यक्ति का खून खौल उठता है और वह बदला लेने पर उतारू हो जाता है - "दिलीप का प्रत्येक शब्द आग का गोला था, सभा के स्त्री-पुरुष, तरूण- वृद्ध सभी का खून खौल उठा - संयम, धैर्य, व्यवस्था, कायदा कुछ भी नहीं सोचा गया । दांत के बदले दांत और नाक के बदले नाक, बस यही नारा बुलन्द हुआ । लोग पीड़ित थे, लुट चुके थे । किसी की आंखों के सामने उसकी बहुओं बेटियों की लाज लूटी गई थी - किन्हीं को अपनी बेटियों को अपने हाथ तलवार के घाट उतारना पड़ा था किन्हीं को अपनी पत्नी को आग में भस्म

करना पड़ा था। पीढ़ियों की कमाई, बाप-दादों का घर-द्वार, देश कारोबार छोड़कर वे खानाबदोशों की भांति यहां आकर पड़े थे उन्हें प्राणों का भला क्या मोह। जीवन की भला क्या चिन्ता। भले-बुरे का भला क्या ज्ञान। प्रचण्ड प्रलय की ज्वाला उनके हृदयों में जल उठी।

आहत, पीड़ित, त्रस्त सर्वहारा व्यक्ति अपने अन्दर नफरत का एक ज्वालामुखी धधकता हुआ अनुभव करता है और इस ज्वाला से सबका विनाश चाहता है, कृष्णा सोबती बंटवारे के दौरान फैली इस घृणा के बारे में लिखती है - "बंटवारे के दरमियान नफरत एक ऐसे पैमाने पर पहुंच गई थी जहां न

सिर्फ जमीन की बांट थी - मानवीय सम्बन्धों के टूटने, खत्म हो जाने की तिडकत और टूटन भी थी। और जब मानवीय सम्बन्ध ही खत्म हो गये तब इंसानी जान की कीमत भी कम हो गई, विभाजन की कीमत इंसानों की जानों से चुकाई गई - "विभाजन की कीमत देश ने दस लाख इंसानी जानों से अदा की थी। विभाजन-रेखा के इस ओर लगभग पाँच लाख लोग मारे गये थे और कोई इतने ही उस ओर यानी दस लाख लोग।

भारत में बसे मुसलमान अपना देश छोड़ने को तत्पर नहीं थे, वे इसी धरती को अपनी जमीं मानते थे, परन्तु पाकिस्तान से आए भारतीयों को यह सहन नहीं हुआ कि मुसलमान भारत में रहे। शरणार्थी हिन्दुओं ने स्थापित मुसलमानों को भारत से उखाड़ने के लिए उन पर हमले करना शुरू कर दिया। 'झूठा सच' में यशपाल ने लिखा - "15 अगस्त 47 के दिन ईसाक मुहम्मद के समझाने पर बहादुरगढ़ मुहल्ले में शेष रह गये सभी मुसलमानों ने अपने मकानों पर भारत के राष्ट्रीय झण्डे फहरा लिये थे। वे लोग अपना वतन छोड़कर 'सलतनते-इलाही' (धर्म-राज्य) में चले जाने को तैयार नहीं थे। हिन्दुओं को, खास कर, पश्चिम से आए हिन्दुओं को मुसलमानों की भारत भक्ति नहीं सुहा रही थी। वे पश्चिम में हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार करके और उन्हें अपने वतन से निकाल देने वाले सम्प्रदाय के लोगों को अपनी छाती पर कैसे बैठा रहने देते। - कांग्रेसियों, कम्युनिस्टों और सूद जी के प्रयत्न करने पर भी मुस्लिम मुहल्लों पर बार-बार हमले हो रहे थे। बहादुरगढ़ मुहल्ले के 27 आदमी कत्ल हो गये थे, गली के पहले दो मकान जल भी गये थे।

भारतीय समाज में शरणार्थियों की समस्या भयानक यथार्थ के रूप में सामने आई। इस स्थिति का एक पक्ष यह भी था कि विस्थापितों को स्थापित करने के लिए मूल निवासियों को उनकी जमीन से, उनकी जीवन प्रणाली से उखाड़ दिये जाने का। 'मुट्ठी भर कांकर' में जगदीशचन्द्र ने उन विस्थापित और स्थापित होने वाले लोक-समूहों की कहानी कही है। पंजाबी शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए दिल्ली के आसपास की गांवों की जमीनें एकायर करने का सरकार ने निर्णय लिया। बंसीलाल ने सबसे ऊपर खबर पढ़ी "पाकिस्तान से आए शरणार्थियों पर सरकार ने एक सौ पचीस करोड़ रुपए खर्च किये हैं। दिल्ली में शरणार्थियों को बसाने के लिए ग्यारह नयी कालोनियां और नौ मारकीटें बनाने की स्कीम। नयी कालोनियों के लिए नजफगढ़ रोड, कालकाजी, निजामुद्दीन वगैरह में जमीनें हासिल करने का फैसला।" यद्यपि उचित मुआवजा दिया गया, फिर भी इन गांवों के कतिपय घर विस्थापित ही नहीं हुए, उखड़ भी गए, क्योंकि उनकी पूरी जीवनप्रणाली ही उखड़ गई थी। ये लोग उखड़े, टूटे, हारे, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, प्रवाह में गिरे पत्ते की तरह किस्मत का दांव खेलने लगे। उनकी वर्षों की स्थिर, स्थितिप्रिय, रूढ़ि-जर्जर जीवन प्रणाली का यह परिणाम था कि कोई और काम करने लायक वे नहीं रहे।

पटवारी से हुक्मनामा सुनकर लोग स्तंभित रह गये। मुखिया ने आह सी भरते हुए कहा - "सारी ही जमीन सरकार ले लेती तो कोई दूसरा धन्धा करने की बात सोचते। इब क्या होगा? जितनी जमीन बची सै, उससे तो खाने भर के लिए नाज पैदा होगा नहीं और मेहनत उतनी ही करनी पड़ेगी।

विस्थापित और पुनर्स्थापित होने की इस प्रक्रिया में व्यक्ति कहीं का भी नहीं रह पाता। जमीन से उखड़ने का दर्द उन्हें निरन्तर सालता रहता है। नई जगह पर वे अपने को स्थापित नहीं कर पाते। इस दुःख की कोई सीमा नहीं है। बदी उज्जमां

की एक कहानी 'अन्तिम इच्छा' में जब कमाल भाई और अन्य मुसलमान पाकिस्तान जाने का फैसला करते हैं तो उन्हें विदा करने वाले नाते रिश्तेदारों को बहुत दुःख होता है - "हजारों आंखें ट्रेन को जाते देखती रहती है -- एक अजीब सी उदासी और वीरानी का एहसास सब पर हावी होने लगता है, जैसे जाने वालों से वे हमेशा-हमेशा के लिए कट चुके हैं। गांधी भाई फूट-फूटकर रोने लगते हैं। सिसकियों में डूबे हुए उनके शब्द आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं - "इन्हें वतन कभी नसीब नहीं होगा। बनी इसराइल की तरह ये हमेशा भटकते रहेंगे और अपनी मिट्टी और हवाओं के लिए तरसते रहेंगे।

देश की आजादी का सबसे बड़ा मूल्य उस निरीह और भोली जनता को चुकाना पड़ा जो पाकिस्तान का अर्थ नहीं समझती थी और अपने सदियों पुराने घरों को छोड़ना नहीं चाहती थी। 'लौटे हुए मुसाफिर' का इफ़्तिकार अपना वतन छोड़कर नहीं जाना चाहता पर चूंकि वह गरीब है इसलिए अपनी स्थिति समझकर सत्तार से कहता है, "कुछ नहीं" सत्तार, हम गरीब मारे जाएंगे... अपना वतन छोड़कर हम कहां जाएंगे ? विभाजन की सबसे बड़ी विडंबना यही रही कि जनता को उनकी इच्छा के विरुद्ध अपना भरा-पूरा घर- बार छोड़कर भागना पड़ा और अनजानी और अनचाही जगह में जाकर शरण लेनी पड़ी।

संदर्भ

1. विजयदेव झारी - हिन्दी कहानी में मुस्लिम जीवन और संस्कृति: पृष्ठ- 107
2. राही मासूम रजा -आधा गांव, पृष्ठ- 315
3. क्या इतिहास का मूक गवाह रहना ही हमारी नियति है ? संचेतना सं. डा०महीपसिंह, वर्ष 17 अंक । मार्च 1983, पूर्णांक 65
4. शिवसागर मिश्र - रक्तबीज, पृ. 273
5. गुरुदत्त - देश की हत्या, पृ. 180-181
6. कमलेश्वर - लौटे हुए मुसाफिर , पृ. 58 , पृ० 102 , पृ० 109 , पृ० 114 , पृ० 116
7. डॉ०हरियश राय - भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास, पृ. 63
8. बलवन्तसिंह - काले कोस, पृ. 298
9. अमृता प्रीतम - चुने हुए उपन्यास, पृ० 63
10. आचार्य चतुरसेन शास्त्री - धर्मपुत्र, पृ. 157
11. कृष्णा सोबती - भीष्म साहनी आधी रोशनी, आधे अंधेरे से अलग और आगे, सं. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर - भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना, पृ०63
12. मंजूर एहतेशाम - सूखा बरगद, पृ. 119
13. यशपाल , झूठा सच, पृ० 25
14. जगदीशचन्द - मुट्ठी भर कांकर' , पृ. 80 , पृ. 102
15. सं. गिरिराज शरण - साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियां, पृ० 120